

21वीं शताब्दी में हिन्दी साहित्य और जीवन मूल्य

सारांश

मानव 21वीं शती की दहलीज पर अनेक प्रश्नों समस्याओं और चुनौतियों के साथ खड़ा है। मनुष्य की अनिश्चित और असुरक्षित भविष्य, संशय और अविश्वास, परस्पर विखण्डन और बिखराव, घुसपैटियों, आतंकवादियों और माफिया गिरोह का सत्ता पर अधिकार, उदारीकरण के नाम पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की बाढ़ ग्लैमर की मूल्यहीन दुनिया, तीसरी दुनिया के तमाम परजीवी बिचौलिये, भूमण्डलीय के नाम पर विकासशील देशों का शोषण भ्रष्ट राजनीतिज्ञ और नौकरशाह, सूचना क्रान्ति के नाम पर विदेशी चैनलों द्वारा सांस्कृतिक मूल्यों पर प्रहार, उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण विघटित होते मानव मूल्य यह परिदृश्य उत्तर आधुनिक युग का है।

मुख्य शब्द : आधुनिक युग, भूमण्डलीकरण, सांस्कृतिक, भ्रष्टाचार।

प्रस्तावना

उत्तर-आधुनिक युग संशय-अनास्था-अविश्वास विखण्डन और परिवर्तन का युग है। इतिहास के अंत की घोषणा हो चुकी है। आज हर मूल्य उपभोक्तावादी संस्कृति पर आ टिका है। गिव एण्ड टेक, यूज एण्ड थ्रो आज इसी उत्तर आधुनिक समाज के मूल्य है। इस अर्थ-युग में हिन्दी-साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा है और जीवन मूल्यों में बदलाव आया है। सूचना-क्रान्ति ने साहित्य को पीछे धकेला है। उत्तर आधुनिक युग के इस आपाधापी वाले युग में साहित्य पढ़ने की फुर्सत किसे है। दिनभर हाड़ तोड़ परिश्रम करने के बाद टी.वी. पर प्रसारित होने वाले एक या दो धारावाहिक देखकर व्यक्ति अपना मनोरंजन कर लेता है।

हमें साहित्य में जीवन-मूल्यों की चिन्ता करने से पूर्व साहित्य की चिन्ता करनी है। आज साहित्य हाशिये पर है। साहित्य समाज के लिए लिखा जाता है और साहित्य के पाठकों में निरन्तर हो रही कमी निश्चित ही चिन्ता का विषय है। सृजन के अर्थ एवं यश से जुड़ने से दायम-दर्जे के साहित्य में भी अभिवृद्धि हुई है जिसमें कोई जीवन-मूल्य नहीं, केवल घटनाओं मात्र का चित्रण ही साहित्य नहीं है। साहित्य में वर्णित कुंठा, निराशा, त्रासदी टूटता-परिवार शोषण-संघर्ष और यौन-कुत्सित चित्रण में जीवन मूल्यों की खोज करना बेमानी है। जीवन-मूल्य बदल गये हैं। हम अपनी जड़ों से कट गये हैं। अपनी अस्मिता की पहचान खो रहे हैं। परम्परा से कट कर अपनी अस्मिता खोकर हम जीवन-मूल्यों का निर्धारण नहीं कर सकते और न ही उनमें कोई ठहराव ला सकते हैं।

हमारे यहाँ मध्य वर्ग के लिए भूमण्डलीकरण, नवउदारवादी, आर्थिक नीतियाँ, संचार क्रान्ति सर्व प्रथम सांस्कृतिक संकट के रूप में महसूस किए गए। आधुनिक भौतिक साधन मध्य वर्ग की पहुँच से बाहर नहीं। वस्तु-मोह आज का युग धर्म हो गया लेकिन तभी तक, जब तक उस वस्तु का उपयोग न हुआ हो। बाजार की इस संस्कृति ने मानव को सुविधा-सम्पन्न तो बनाया है किन्तु भौतिक साधनों की चाह ने व्यक्ति को अति-व्यस्त किया है और भ्रष्टाचार को भी जन्म दिया है। पूंजीवादी राष्ट्र अमेरिका की गिरपत में भारत जैसे विकासशील देश आ चुके हैं। बड़ी-बड़ी कम्पनियों के अर्थनिवेश से भारत बाजार बन गया है। इस भौतिकता की अंधी दौड़ में शामिल होते हुए भारतीय स्त्री-पुरुष युवा सब बिकने को तैयार हैं। पारिवारिक मर्यादाएँ टूट चुकी हैं। नैतिकता हमसे रूठ गयी है। बाप-बेटे में भी परस्पर विश्वास नहीं है। मुंशी प्रेमचन्द्र घीसू और माधव के माध्यम से इसे 'कफन' कहानी में प्रस्तुत कर चुके हैं।

नारी के शरीर के प्रत्येक हिस्से का व्यवसायीकरण किया जा रहा है। रातों रात सब कुछ बदल देने या पा लेने की छटपटाहट जो युवा-वर्ग में दिखाई देती है क्या वह हिंसा लूट डकैती जैसे अनाचारों को बढ़ावा नहीं देती। इस बेरोजगारी के युग में युवा वर्ग में इस प्रकार की छटपटाहट स्वाभाविक है। प्राइवेटाईजेशन, सरकारी अमले की छटनी, वृद्धों के प्रति संवेदनहीनता, लड़के और लड़कियों में खुलापन, सेक्स और नशे की बढ़ता प्रसार रोजगार में कटौती और निजीकरण इसी भूमण्डलीकरण और 21वीं शदी की देन है। इस उपभोक्तावादी



अनिल कुमार उपाध्याय
सहायक अध्यापक,
हिन्दी विभाग,
राजकीय पी.जी. कॉलेज
मुरैना।

संस्कृति और बाजारीकरण के खतरे केवल सांस्कृतिक ही नहीं बल्कि खतरा तो अपनी राष्ट्रीय अस्मिता बनाए रखने और राष्ट्रीय संप्रभुता का भी है। भूमंडलीकरण के साथ मुक्त व्यापार या मुक्त बाजार किसी लोक तांत्रिक प्रक्रिया की उपज नहीं बल्कि मुट्ठी भर पश्चिमी देशों ने इसे पूरी दुनिया पर थोप दिया। भूमंडलीकरण स्वयं सुप्रास्टेट का रूप ले चुका है। यह सफल लोगों का सर्वहारावर्ग बहुल राष्ट्रों से अलगगाव है।

भूमंडलीकरण के नाम पर विभिन्न राष्ट्रों के मध्य एवं राष्ट्र के अंदर विषमता की खाई को और भी अधिक गहरा और चौड़ा किया है। हम धार्मिक और जातीय विद्वेष से ऊपर नहीं उठ पाते। इतिहास ने इसे भारत के विभाजन के रूप में देखा है भीष्म साहनी के 'तमस' और स्वयं प्रकाश की कहानी 'पार्टीशन' में इसी धार्मिक और जातीय विद्वेष का उल्लेख है जबकि भूमंडलीकरण ने प्रत्येक देश प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक व्यक्ति से कोन्टेक्ट एवं कनवर्ज करने का विचार दिया है। यों तो 'ग्लोबलाविलेज' की परिकल्पना से हजारों वर्ष पूर्व हमारे मनीषी सारी दुनिया को एक परिवार घोषित कर चुके थे। पर 21वीं शदी में इस परिवर्तन ने शहर की नहीं गाँव भी बाँट दिया है। व्यक्ति परिवार में रहकर भी अकेला है। यथा

“देख रहा हूँ बहुत कुछ
जैसे गाँव के ढेरों मकान
पर पड़ौसी से संवाद
बिल्कुल गायब
बन गये है अनेक अहाते
पर उनकी दीवारें नहीं देती इजाजत
कि थोड़ी देर मिलकर
पूछ लिया जाये उनका हालचाल

लौटा हूँ घर बहुत दिनांक बाद
और देख रहा हूँ
आधुनिक गाँव का मुखौटा
उत्तर आधुनिक समय में।” –1

मानवीय-संवेदना इस तरह समाप्त होती जा रही कि विकसित राष्ट्र अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए— अपने वर्चस्व बनाए रखने और अपनी संप्रभुता दूसरों पर थोपने के लिए परमाणु अस्त्रों का खुलकर प्रयोग करते हैं –

“पहले उन्होंने जी भर/अग्निक्षेपी बम गिराये
कई सौ नर-नारियों को बच्चों को/ अनजाने
जलाया भस्म सात् किया
हजारों को क्षत विक्षत
सैकड़ों स्कूलों— पूजाघरों को तहस-नहस
दर्जनभर अस्पतालों को नष्ट भ्रष्ट”। –2

उत्तर आधुनिक युग में तीन बिन्दु महत्वपूर्ण है पहला नारी की अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष दूसरा दलित चेतना तीसरी निजता और विघटन का भाव स्त्री-उत्पीडन का जबरजस्त विरोध करने वाली कहानी जोकर (अर्चना वर्मा) दलित चेतना की प्रतिनिधि कहानी कूड़ाघर (ओम प्रकाश बाल्मीकि) और निजता एकाकीपन का एहसास हमें रमेश उपाध्याय की कहानियों में मिलता है।

21वीं शदी में अपनी जमीन पर रहकर अपनी पहचान बनाये रखते हुए ही हम जीवन-मूल्यों को बनाए रख सकते हैं। अपनी पहचान मिटाकर नहीं।

सन्दर्भ

1. बहुत दिनांक बाद अनिल त्रिपाठी, साक्षात्कार जुलाई 1999
2. साक्षात्कार जुलाई 1999